International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 8.141
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol. 7 No. 35 March – April - 2026

हिंदी कविता में पर्यावरण संरक्षण और मानवीय संवेदना

डॉ. सुनील चव्हाण[1], दिपाली तांबे[2]

[1]हिंदी विभाग, शिक्षण प्रसारक संस्था का संगमनेर नगरपालिका कला, दा.ज.मालपाणी वाणिज्य एवं ब.ना. सारडा विज्ञान, महविद्यालय, संगमनेर

[2]अनुसंधान केंद्र, हिंदी विभाग, संगमनेर महाविद्यालय संगमनेर

***Corresponding Author –* डॉ. सुनील चव्हाण**

DOI - 10.5281/zenodo.20489062

सार:

'पर्यावरण' शब्द की व्युत्पत्ति हिंदी में 'परि' तथा 'आवरण' दो शब्दों से मिलकर हुई है। यहाँ 'परि' का आशय चारों ओर या आसपास से है, जबकि 'आवरण' का अर्थ घेरने वाला आवेष्टन होता है। इस प्रकार पर्यावरण उस समग्र परिवेश को कहा जाता है, जो मनुष्य को हर दिशा से घेरता हुआ उसके जीवन को प्रभावित करता है। इसके अंतर्गत वायु, जल, भूमि, वनस्पति, जीव-जंतु, पर्वत, नदियाँ, ऋतुएँ तथा सभी जैविक और अजैविक तत्त्व शामिल होते हैं।

वर्तमान समय में पर्यावरण की अवधारणा केवल प्रकृति तक सीमित नहीं रह गई है बल्कि यह मनुष्य और प्रकृति के बीच स्थापित संबंधों की एक जटिल एवं संतुलित व्यवस्था को भी दर्शाती है। इसी परस्पर संबंध और संतुलन के अध्ययन को पारिस्थितिकी (Ecology) कहा जाता है। हिंदी साहित्य में पर्यावरण का विषय भारतीय संस्कृति, जीवन-दर्शन और सामाजिक मूल्यों से गहराई से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में प्रकृति को केवल उपयोग की वस्तु नहीं माना गया बल्कि उसे 'माता' के रूप में सम्मान दिया गया है। वेद, उपनिषद और पुराणों में सूर्य, अग्नि, वायु, पृथ्वी तथा नदियों की स्तुति के अनेक उदाहरण मिलते हैं, जो इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं। यही प्रकृति-सम्मान की भावना आगे चलकर हिंदी साहित्य में भी विविध रूपों में व्यक्त होती है।

साहित्यकार अपने युग और समाज की परिस्थितियों के प्रति सजग रहता है। वह अपनी रचनाओं के माध्यम से समय की समस्याओं, सामाजिक परिवर्तनों और मानवीय भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। इस दृष्टि से साहित्य केवल समाज का प्रतिबिंब ही नहीं, बल्कि उसकी चेतना और विचारधारा का संवाहक भी होता है। इसलिए जब-जब पर्यावरण संबंधी संकट उत्पन्न हुए हैं, तब-तब साहित्यकारों ने अपनी कृतियों के माध्यम से प्रकृति के प्रति चिंता और संरक्षण की आवश्यकता को रेखांकित किया है।

बीजशब्द (Keywords) : पर्यावरण, प्रकृति-चित्रण, पर्यावरणीय चेतना, पारिस्थितिकी, प्रकृति और मानव संबंध, पर्यावरण संरक्षण, प्रकृति-सौंदर्य, पर्यावरण संकट, उपभोक्तावादी/भोगवादी दृष्टिकोण, प्राकृतिक आपदाएँ।

वर्तमान समय में औद्योगीकरण, तीव्र शहरीकरण तथा उपभोक्तावादी जीवन-शैली के विस्तार ने पर्यावरणीय संतुलन को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। जलवायु परिवर्तन, बढ़ता हुआ प्रदूषण, वनों का निरंतर विनाश तथा जैव-विविधता में कमी जैसी समस्याएँ आज मानव सभ्यता के समक्ष गंभीर संकट के रूप में उपस्थित हैं। इन चुनौतियों ने न केवल प्राकृतिक व्यवस्था को प्रभावित किया है, बल्कि मानव जीवन की स्थिरता और भविष्य को भी प्रश्नों के घेरे में

ला खड़ा किया है। ऐसी परिस्थितियों में हिंदी साहित्यकारों ने पर्यावरण को मानव जीवन से जुड़ी एक महत्त्वपूर्ण चिंता के रूप में स्वीकार किया है। समकालीन हिंदी कवियों ने अपनी कविताओं, गीतों, ग़ज़लों, दोहों तथा अन्य साहित्यिक विधाओं के माध्यम से प्रकृति के विनाश के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त की है। साथ ही उन्होंने पर्यावरणीय संकट के प्रति समाज को सचेत करते हुए संरक्षण और संतुलन की आवश्यकता पर भी बल दिया है। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य में पर्यावरण-विमर्श केवल प्रकृति के सौंदर्य-वर्णन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानवीय अस्तित्व, सांस्कृतिक परंपराओं और सामाजिक उत्तरदायित्व से जुड़े व्यापक विचार का रूप ले चुका है। यह विमर्श मनुष्य और प्रकृति के मध्य संतुलित एवं सह-अस्तित्वपूर्ण संबंध स्थापित करने की प्रेरणा देता है तथा पर्यावरण की रक्षा को मानव का नैतिक दायित्व मानता है।

आधुनिक युग में मानव जीवन से जुड़े अनेक महत्वपूर्ण विषयों में पर्यावरण का स्थान अत्यंत प्रमुख है। वर्तमान समय में पर्यावरण संरक्षण केवल सामाजिक चिंता का विषय नहीं रह गया है, बल्कि यह एक वैश्विक समस्या के रूप में उभरकर सामने आया है। पृथ्वी का पारिस्थितिक संतुलन निरंतर असंतुलित होता जा रहा है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव मानव जीवन और उसके अस्तित्व पर पड़ रहा है। आज विश्व के अधिकांश देश पर्यावरण प्रदूषण की गंभीर समस्या से जूझ रहे हैं। वायु प्रदूषण के कारण विभिन्न श्वसन संबंधी बीमारियाँ तेजी से बढ़ रही हैं। इसी प्रकार जल प्रदूषण के परिणामस्वरूप स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता घटती जा रही है, जबकि भूमि प्रदूषण कृषि उत्पादन और मिट्टी की उर्वरता को प्रभावित कर रहा है। औद्योगिक विकास, तीव्र शहरीकरण और जनसंख्या में लगातार वृद्धि ने प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक दबाव उत्पन्न कर दिया है। इन परिस्थितियों का परिणाम यह हुआ है कि अनेक तालाब और झीलें धीरे-धीरे लुप्त हो रही हैं। कई नदियाँ या तो सिकुड़ती जा रही हैं अथवा प्रदूषण के कारण अपनी जीवनदायिनी क्षमता खोती जा रही हैं। इसके अतिरिक्त भूजल स्तर में निरंतर गिरावट भी एक गंभीर समस्या के रूप में सामने आ रही है, जो भविष्य के लिए चिंता का विषय है।

वनों की निरंतर कटाई तथा प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन ने पृथ्वी की जैव-विविधता को गहरी क्षति पहुँचाई है। इसके परिणामस्वरूप अनेक पशु-पक्षी और वन्य जीव विलुप्ति के कगार पर पहुँच गए हैं। साथ ही जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से मौसम चक्र भी असंतुलित होता जा रहा है, जिसके कारण अनियमित वर्षा, अत्यधिक तापमान, सूखा तथा बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं की घटनाएँ बढ़ती दिखाई दे रही हैं। यह स्थिति स्पष्ट रूप से संकेत करती है कि प्रकृति के असंतुलित और स्वार्थपूर्ण उपयोग ने अंततः मानव जीवन को ही संकट में डाल दिया है। इसके अतिरिक्त आधुनिक विज्ञान और तकनीक की प्रगति ने जहाँ मानव जीवन को नई संभावनाएँ प्रदान की हैं, वहीं कुछ नई चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं। विशेष रूप से आणविक और परमाणु हथियारों की प्रतिस्पर्धा ने विश्व शांति के लिए गंभीर खतरे पैदा कर दिए हैं। यदि परमाणु युद्ध जैसी स्थिति उत्पन्न होती है, तो उसका प्रभाव केवल मानव समाज तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि संपूर्ण पृथ्वी के पर्यावरण को भी विनाशकारी रूप से प्रभावित करेगा।

रेडियोधर्मी विकिरण का दुष्प्रभाव दीर्घकाल तक बना रहता है, जो कई पीढ़ियों तक मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण को प्रभावित कर सकता है। इसके कारण भूमि, जल और वायु जैसे प्राकृतिक तत्त्व भी प्रदूषित हो सकते हैं, जिससे जीवन के लिए आवश्यक संतुलन पूरी तरह बिगड़ सकता है।इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पर्यावरण संरक्षण आज मानव सभ्यता की अनिवार्य आवश्यकता बन चुका है। यदि समय रहते सतत विकास की अवधारणा को अपनाते हुए

प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग नहीं किया गया और पर्यावरणीय जागरूकता को प्राथमिकता नहीं दी गई, तो भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित और स्वस्थ जीवन की कल्पना करना अत्यंत कठिन हो जाएगा।

हिंदी साहित्य में पर्यावरण का चित्रण अत्यंत गहन और संवेदनात्मक रूप में देखने को मिलता है। प्रकृति केवल सौंदर्य-वर्णन का माध्यम नहीं रही, बल्कि यह मानव जीवन, धार्मिक आस्था, सांस्कृतिक परंपराओं और नैतिक मूल्यों से गहराई से जुड़ी रही है। जैसे-जैसे समय बीता और पर्यावरणीय संकट बढ़ा, इसका प्रभाव हिंदी साहित्य में भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा। साहित्यकारों ने अपने सृजन के माध्यम से प्रकृति के प्रति प्रेम, आत्मीयता और उसके संरक्षण को मानवीय कर्तव्य के रूप में स्थापित किया। प्राचीन और मध्यकालीन हिंदी साहित्य में प्रकृति के प्रति गहन श्रद्धा और संतुलित जीवन-दृष्टि दिखाई देती है। संत कवि जैसे कबीर, रविदास, तुलसीदास और सूरदास ने अपने दोहों, पदों और भजनों में प्रकृति को आध्यात्मिक अनुभूति से जोड़कर प्रस्तुत किया। इनके सृजन में प्रकृति केवल एक भौतिक वस्तु नहीं, बल्कि ईश्वर की सृष्टि के रूप में प्रतिष्ठित है। अतः इनके अनुसार प्रकृति की रक्षा और संरक्षण करना भी धर्म का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

तुलसीदास कृत '***रामचरितमानस*** 'में प्रकृति-प्रेम और पर्यावरणीय संतुलन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। राम द्वारा गंगा, यमुना आदि नदियों की वंदना करना प्रकृति के प्रति श्रद्धा का प्रतीक है। वनवास के प्रसंगों में वन, पर्वत, नदी और वृक्षों का अत्यंत सजीव और सम्मानपूर्ण चित्रण मिलता है। एक उल्लेखनीय प्रसंग में, जब समुद्र मार्ग नहीं देता, तो लक्ष्मण क्रोध में समुद्र को सुखाने का सुझाव देते हैं; किंतु राम इस विचार को अस्वीकार करते हैं। वे समझते हैं कि ऐसा करने से समुद्र में रहने वाले असंख्य जीव-जंतु और वनस्पतियाँ नष्ट हो जाएँगी। यह प्रसंग पर्यावरणीय संतुलन और अहिंसात्मक दृष्टिकोण का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करता है। रीतिकाल और भक्ति साहित्य में भी प्रकृति का सौंदर्य केवल अलंकारिक तत्व नहीं है, बल्कि वह जीवन का आधार है। संत कवि **अब्दुर्रहीम ख़ान-ए-ख़ाना** ने जल के महत्व को अत्यंत सरल किंतु गहन शब्दों में व्यक्त किया—

"रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती मानुस चून।।"

इस दोहे में 'पानी' केवल जल नहीं, बल्कि जीवन, मर्यादा और अस्तित्व का प्रतीक है। जल के बिना जैसे मोती, मनुष्य और चूना नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही जीवन की मूल संरचना भी समाप्त हो जाती है। यह संदेश आज के जल-संकट की पृष्ठभूमि में और अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है। आधुनिक युग में सुमित्रानंदन पंत, मैथिलीशरण गुप्त, अज्ञेय, तथा सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जैसे कवियों ने प्रकृति को आत्मानुभूति और मानवीय संवेदना से जोड़ा। छायावादी काव्य में प्रकृति और मानव के बीच गहरा आत्मिक संबंध स्थापित किया गया है। आधुनिक और समकालीन कविता में यह स्वर पर्यावरणीय संकट के प्रति चेतावनी और प्रतिरोध के रूप में उभरता है। इस प्रकार हिंदी साहित्य की विभिन्न धाराओं में पर्यावरण के अनावश्यक दोहन का प्रत्यक्ष या परोक्ष विरोध मिलता है। साहित्य ने न केवल प्रकृति के सौंदर्य का गुणगान किया है, बल्कि मनुष्य को उसके संरक्षण के प्रति जागरूक भी किया है। यह परंपरा सिद्ध करती है कि पर्यावरण संरक्षण की चेतना कोई आधुनिक अवधारणा नहीं, बल्कि भारतीय साहित्यिक परंपरा में प्राचीन काल से ही निहित रही है।

हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक प्रकृति और पर्यावरण का बहुआयामी चित्रण मिलता है। आदिकालीन वीरगाथाओं में प्रकृति युद्धभूमि और जीवन-परिस्थिति की पृष्ठभूमि बनती है; भक्ति काल में वह ईश्वर की सृष्टि और आध्यात्मिक अनुभूति का माध्यम बन जाती है;

रीतिकाल में प्रकृति सौंदर्य और श्रृंगार के रूप में उभरती है। आधुनिक काल में आते-आते यही प्रकृति पर्यावरण-चिन्ता का स्वर ग्रहण कर लेती है। विशेषतः छायावादी काव्य को 'प्रकृति-काव्य' कहा जाता है, क्योंकि इसमें प्रकृति और मानव-मन के गहरे आत्मिक संबंध को अभिव्यक्ति मिली है। छायावाद के प्रमुख स्तंभ जयशंकर प्रसाद के काव्य में प्रकृति केवल रमणीय दृश्य नहीं, बल्कि मानवीय चेतना की सहयात्री है। उनके काव्य-संग्रह—**कामायनी**, **झरना**, **लहर** तथा **कानन कुसुम**—में प्रकृति के सौंदर्य के साथ-साथ उसके संरक्षण की अंतर्धारा भी प्रवाहित होती है।

"हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह;
एक पुरुष, भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह।"

कामायनी में 'इड़ा' का चरित्र बुद्धि और जागरूकता का प्रतीक है। वह मनुष्य को यह बोध कराती है कि उसके दुःख और निराशा का मूल कारण स्वयं उसकी अति-आकांक्षा और प्रकृति से विच्छेद है। इड़ा संकेत करती है कि प्रकृति मानव-जीवन में संतुलन, शांति और आशा का संचार करती है; किंतु मनुष्य अपने स्वार्थवश उसी का विनाश कर रहा है। उद्धृत पंक्तियों में हिमाच्छादित पर्वत-शृंखलाओं, नदियों और वसुधा के माध्यम से प्रकृति की विराटता तथा उसकी मौन साधना का चित्र उपस्थित किया गया है। यहाँ प्रकृति की गरिमा और उसकी उपेक्षा—दोनों का बोध साथ-साथ होता है।*कामायनी* में एक ओर प्रकृति का सौम्य और शांत रूप है, तो दूसरी ओर उसका प्रलयंकारी स्वरूप भी चित्रित है। जल-प्रलय का प्रसंग यह दर्शाता है कि जब प्रकृति का संतुलन भंग होता है, तो उसका परिणाम विनाशकारी होता है। यह प्रसंग प्रतीकात्मक रूप से मनुष्य को चेतावनी देता है कि यदि वह प्रकृति के नियमों की अवहेलना करेगा, तो परिणाम भयावह होंगे।

इस प्रकार जयशंकर प्रसाद के काव्य में प्रकृति केवल सौंदर्य-बोध का साधन नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन का आधार है। छायावादी काव्यधारा में प्रकृति के माध्यम से आत्मानुभूति, संवेदना और पर्यावरणीय चेतना का समन्वय दिखाई देता है। आधुनिक संदर्भ में यह संदेश और भी प्रासंगिक हो उठता है कि प्रकृति के साथ सामंजस्य ही मानव-कल्याण का मार्ग है। मनुष्य का प्रकृति के प्रति उपभोगवादी (भोगवादी) दृष्टिकोण आज उसके अपने अस्तित्व के लिए संकट बनता जा रहा है। जब प्रकृति को केवल संसाधन मानकर उसका अंधाधुंध दोहन किया जाता है, तब उसका दुष्परिणाम अकाल, बाढ़, भूकंप, सूखा और अन्य प्राकृतिक आपदाओं के रूप में सामने आता है। पर्यावरणीय असंतुलन अंततः मानव जीवन को ही प्रभावित करता है।

प्रगतिशील काव्यधारा के सशक्त कवि बाबा नागार्जुन ने अकाल जैसी भीषण प्राकृतिक आपदा का अत्यंत यथार्थ और मार्मिक चित्रण किया है। उनकी प्रसिद्ध कविता **अकाल और उसके बाद** में अकाल की त्रासदी को सामान्य जन-जीवन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है—

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास।
कई दिनों तक कानी कुतिया, सोई उनके पास।
कई दिनों तक लगी भीत पर, छिपकलियों की गश्त,
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।।"

इन पंक्तियों में 'चूल्हा रोया' और 'चक्की रही उदास' जैसे बिंबों के माध्यम से भूख और अभाव की स्थिति को सजीव कर दिया गया है। यहाँ केवल मनुष्य ही नहीं, बल्कि पशु-पक्षी और घर की निर्जीव वस्तुएँ भी अकाल की पीड़ा में सहभागी प्रतीत होती हैं। यह चित्रण बताता है कि पर्यावरणीय संकट का प्रभाव समस्त जीव-जगत पर पड़ता है।अकाल जैसी स्थितियाँ केवल प्राकृतिक कारणों से नहीं, बल्कि मानवीय अविवेक से भी उत्पन्न होती

हैं। वनों की कटाई, जल-स्रोतों का क्षय, भूमि का अत्यधिक दोहन और असंतुलित कृषि-पद्धतियाँ पर्यावरण को कमजोर करती हैं। परिणामस्वरूप वर्षा का चक्र प्रभावित होता है और सूखे या बाढ़ जैसी स्थितियाँ जन्म लेती हैं।इसके अतिरिक्त, वैज्ञानिक प्रगति के नाम पर किए जा रहे अनेक अनियंत्रित प्रयोग—जैसे परमाणु परीक्षण, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का अत्यधिक प्रयोग, औद्योगिक उत्सर्जन आदि—भी पर्यावरण को क्षति पहुँचा रहे हैं। जब विज्ञान नैतिकता और संतुलन से अलग हो जाता है, तो वह विकास के स्थान पर विनाश का कारण बन सकता है।

इस प्रकार हिंदी साहित्य में बाबा नागार्जुन जैसे कवियों ने पर्यावरणीय संकट को केवल प्राकृतिक आपदा के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक और मानवीय समस्या के रूप में प्रस्तुत किया है। उनका काव्य हमें चेतावनी देता है कि यदि मनुष्य ने अपनी भोगवादी प्रवृत्ति पर नियंत्रण नहीं रखा, तो अकाल और विनाश की ऐसी स्थितियाँ बार-बार सामने आती रहेंगी।हिंदी साहित्य में छायावाद को प्रकृति-काव्य की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि इस धारा के कवियों ने प्रकृति को केवल दृश्य-वर्णन का विषय न मानकर उसे चेतन, संवेदनशील और आत्मीय सत्ता के रूप में ग्रहण किया। इसी कारण **सुमित्रानंदन पंत** को प्रकृति के सर्वाधिक सुकुमार और सौंदर्य-संवेदनशील कवि के रूप में प्रतिष्ठा मिली।

सुमित्रानंदन पंत जी के काव्य-संग्रह—**वीणा**, **पल्लव**, तथा **कला और बूढ़ा चाँद**—में प्रकृति के प्रति गहन अनुराग और पर्यावरणीय संवेदना व्यक्त हुई है। *'वीणा'* में कवि स्वयं को बालिका के रूप में प्रस्तुत कर प्रकृति से जिज्ञासापूर्ण संवाद करता है। यहाँ प्रकृति सजीव है—वह सुनती है, उत्तर देती है और मनुष्य के हृदय को स्पर्श करती है। *'पल्लव'* में प्रकृति एक विराट चित्रशाला के रूप में उपस्थित होती है, जहाँ बादल, नक्षत्र, पवन, लहर और बसंत अपने-अपने रंगों से सौंदर्य रचते हैं। पंत ने उपमाओं और बिंबों के माध्यम से प्रकृति के रूप-सौंदर्य को कल्पनाशीलता के साथ चित्रित किया है।

"पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश,
पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश।
मेखलाकर पर्वत अपार,
अपने सहस्त्र दृग-सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार-बार।"

इन पंक्तियों में वर्षा-ऋतु के पर्वतीय दृश्य का अत्यंत सजीव चित्रण है। पर्वत को 'सहस्त्र दृग-सुमन' वाला चेतन प्राणी मानकर कवि ने प्रकृति में चेतना का आरोप किया है। यह छायावादी विशेषता है, जहाँ प्रकृति मानव-मन की भावनाओं का प्रतिबिंब बन जाती है। पंत के लिए प्रकृति के संपर्क में आना आत्मिक आनंद और शांति का स्रोत है । छायावाद के बाद प्रयोगवाद में भी मानव और पर्यावरण के संबंधों की गहरी अभिव्यक्ति मिलती है। प्रयोगवाद के प्रवर्तक कवि अज्ञेय ने अपनी प्रसिद्ध कविता **असाध्य वीणा** में मानव के अहंकार और आत्मानुभूति के प्रश्न को उठाया है। यहाँ 'वीणा' केवल वाद्ययंत्र नहीं, बल्कि प्रकृति और ब्रह्मांड की जटिल लय का प्रतीक है।

कविता का मूल संदेश यह है कि जब तक मनुष्य अपने अहंकार का त्याग नहीं करता, तब तक वह प्रकृति की वास्तविक ध्वनि और जीवन-संगीत को नहीं समझ सकता। आत्मानुभूति के माध्यम से ही मनुष्य अपने सीमित दायरे से बाहर निकलकर विश्व-चेतना से एकाकार हो सकता है।अज्ञेय का संकेत स्पष्ट है—यदि मनुष्य प्रकृति के साथ संतुलन नहीं बनाएगा और उसे केवल उपभोग की वस्तु समझेगा, तो वही प्रकृति, जो उसे प्रकाश, ऊर्जा और जीवन प्रदान करती है, विनाश का कारण भी बन सकती है।इस प्रकार छायावाद और प्रयोगवाद दोनों ही काव्यधाराएँ यह प्रतिपादित करती हैं कि पर्यावरण संरक्षण केवल बाहरी व्यवस्था नहीं, बल्कि आंतरिक चेतना और नैतिक जिम्मेदारी का प्रश्न है। प्रकृति के

साथ सामंजस्य ही मानव जीवन की स्थायी शांति और समृद्धि का आधार है।

निष्कर्ष:

अतः यह स्पष्ट है कि हिंदी काव्य में पर्यावरण के विभिन्न आयामों का अत्यंत सूक्ष्म और सजीव चित्रण पाया जाता है। यहाँ प्रकृति केवल सौंदर्य का माध्यम नहीं रही, बल्कि इसे मानवीय संवेदनाओं, जीवन-दर्शन और सामाजिक चेतना के साथ गहराई से जोड़ा गया है। साहित्य और मानव जीवन का आपसी संबंध सदैव घनिष्ठ रहा है, और हिंदी काव्य ने अपने समय के समाज की भावनाओं तथा मानव चिंताओं को सजीव रूप में व्यक्त किया है। हिंदी साहित्य में प्रत्येक प्राकृतिक तत्त्व—वृक्ष, नदियाँ, फल, फूल, अनाज—का महत्व उजागर किया गया है। तथापि आधुनिक समय में मनुष्य के स्वार्थपरक और भोगवादी दृष्टिकोण ने प्रकृति के असंतुलित दोहन को जन्म दिया है। ऐसी परिस्थिति में काव्य जगत मौन नहीं रह सकता; कवि और साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में चेतना फैलाते हुए मानव और प्रकृति के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करते हैं। भूमंडलीकरण और बाजारवाद की व्यापक प्रवृत्तियों ने पर्यावरण को अधिक संकटग्रस्त बना दिया है। इसके परिणामस्वरूप स्वच्छ वायु, शुद्ध जल और पोषक आहार की कमी जैसी समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। ऐसे समय में हिंदी काव्य साहित्य ने सजग दृष्टि बनाए रखी है और सदियों से पर्यावरण संरक्षण तथा प्राकृतिक संसाधनों के प्रति जागरूकता फैलाने का कार्य किया है। इस प्रकार, हिंदी साहित्य में व्यक्त की गई पर्यावरणीय चेतना केवल साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि हमारे पर्यावरण के संतुलित और सुरक्षित भविष्य के लिए भी अत्यंत आवश्यक है।

संदर्भ :

१. हिंदी साहित्य का इतिहास आ. रामचंद्र शुक्ल
२. कामायनी जयशंकर प्रसाद प्रथम संस्करण १९९५ पृ. ५६
३. कामायनी जयशंकर प्रसाद, चिंता सर्ग पृ. ०५
४. अकाल और उसके बाद कवि नागार्जुन साहित्य विविधा-
५. आधुनिक कवि विश्वंभर 'मानव' रामकिशोर शर्मा पृ.